# किताबें विविधतापूर्ण जीवन की झलक हैं

### अनिल सिंह

इन्सानी ज़िन्दगी में विविधता है। यही विविधता हमारी कहानियों, कविताओं व अन्य साहित्यिक विधाओं में भी दिखाई देती है। एक वयस्क दिमाग में कौन-सी रुकावटें हैं कि वो इस विविधता को न तो आमने-सामने और न ही किसी साहित्यिक कृति में सहजता से स्वीकार कर पाता है?

किताबें जीवन से निकलती हैं और निकलती रहेंगी। समाज और जीवन में जितनी विविधता, उतार-चढ़ाव, अच्छा-बुरा, सकारात्मक-नकारात्मक है, उतना ही किताबों में भी मिलने वाला है। उत्तर आधुनिकता के इस दौर में जब हर एक समुदाय अपनी विशिष्टता और पहचान के लिए संगठित हो रहा है और अपने विशिष्ट अधिकारों की बात करने लगा है, ऐसे दौर में सभी को एक-दूसरे के बारे में जानने-समझने और संवेदनशील व उदार होने की ज़रूरत और भी ज़्यादा मौजूँ हो जाती है।

## अच्छे साहित्य की भूमिका

औद्योगीकरण और आधुनिक वैश्विक राजनीति के चलते हम सब विविध और भिन्न सांस्कृतिक पहचान वाले समूह एक-दूसरे के निकट आए हैं और साथ-साथ काम करने की स्थिति में हैं, इसलिए हमें साहचर्य सीखना ही होगा। किताबें और अन्य प्रकार का साहित्य, कला, सिनेमा आदि इस दिशा में हमारे मददगार साबित हो सकते हैं। लेकिन ज़ाहिर है कि इनमें विचारधाराओं, पहचानों, और दावों की टकराहट भी उतनी ही स्वाभाविक है। एक पाठक, दर्शक या सराहनाकर्ता के तौर पर हम एक व्यक्तिगत एवं विशिष्ट अनुभव से गुज़रते हैं जो हमारे एहसासों, विचार प्रक्रिया और धारणाओं को झंकृत करता है। व्यक्त की गई प्रतिक्रिया व्यक्तिगत और सामूहिक, दोनों किस्म की हो सकती है। विचार यह करना होगा कि क्या कोई किताब, चित्र या सिनेमा इतना आक्रामक हो सकता है, जिससे हमारी एक लम्बे समय की अर्जित पहचान पर संकट खड़ा हो जाए? हम इस समाज से अन्तरक्रिया करते हुए बड़े होते हैं और साथ ही, इस व्यापक समाज का हिस्सा बनकर इसी प्रक्रिया में योगदान कर रहे होते

हैं। एक तरह से इस गतिशील समाज के साथ हम कदमताल भी कर रहे होते हैं और इसे बदलने की अगुआई में भी शामिल होते हैं। समाज के इस बदलते और गतिमय परिवेश में तमाम विचार और मान्यताएँ उभरते रहते हैं और समाज इन्हें संश्लेषित करते हुए कुछ को अपने आप में शामिल कर लेता है और कुछ समय के साथ मद्धिम पड़ते हुए खत्म हो जाते हैं।

यह समाज जैसा आज दिख रहा है, वह हमेशा से ऐसा नहीं रहा है। समाज ने खुद को लगातार बदलते हुए आज ये स्वरूप पाया है, निरन्तर बदलाव के दौरों से गुज़रते हुए। हम अपनी पीढ़ी में, अपने जीवन में उस बदलाव का शायद अंश-मात्र ही महसूस कर पाएँ।

**किसी किताब या सिनेमा को यह मानकर कि यह हमारे समाज की व्यापक मान्यता, धारणा या रूपरेखा के प्रतिकूल है, खारिज करना या उसे प्रतिबन्धित करना समाज की गतिशीलता को चुनौती देना है। समाज सिर्फ बहुसंख्यक या एक-जैसा सोचने, समझने या अनुभव करने वाले लोगों से मिलकर ही नहीं बना है, इसमें तमाम भिन्न विचारों, पहचानों और अलग ज़रूरत वाले लोगों का भी उतना ही हिस्सा है।**

कोई भी साहित्य जो उद्वेलित करता है, वह बदलाव की तरफ इशारा करता है, एक नई दृष्टि लाता है - जैसा पहले नहीं सोचा गया, नहीं देखा गया, उसे सामने लाता है। जब लोग अपने से भिन्न लोगों के बारे में या अपने मत से भिन्न जीवन शैली से जुड़ी बातें किताबों में पढ़ते हैं या सिनेमा में देखते हैं तो उन्हें जहाँ एक ओर यह आक्रामक लगता है, वहीं दूसरी ओर मन के किसी कोने में उनके अपने सीमित होने, या अनभिज्ञ होने का भी एहसास जागता है। इन्सान मूलतः प्रगतिशील है, वह आगे बढ़ना चाहता है, पहले से ज़्यादा जानना चाहता है और विविधता से समृद्ध होना चाहता है। परन्तु क्षणिक आवेश उसे अपनी पहचान और अपने मत तक सीमित कर देता है और वह किसी किताब या सिनेमा को अपने खिलाफ खड़ा पाता है। इसके चलते यदि कोई किताब या सिनेमा प्रतिबन्धित कर भी दिया जाए तब भी उसके होने से इनकार नहीं किया जा सकता। वह एक ऐसी सच्चाई है जो उद्‌घाटित अभी हुई है लेकिन वह हमेशा से मौजूद रही है। उसे स्वीकार न करके हम दरअसल समाज की व्यापकता और उसकी लगातार बदलते रहने की प्रवृत्ति से मुँह चुराते हैं।

## शिक्षक प्रशिक्षण में *सिर का सालन*

शिक्षकों के एक प्रशिक्षण में मैंने *एकलव्य* प्रकाशन की *सिर का सालन* किताब का इस्तेमाल किया। मोहम्मद

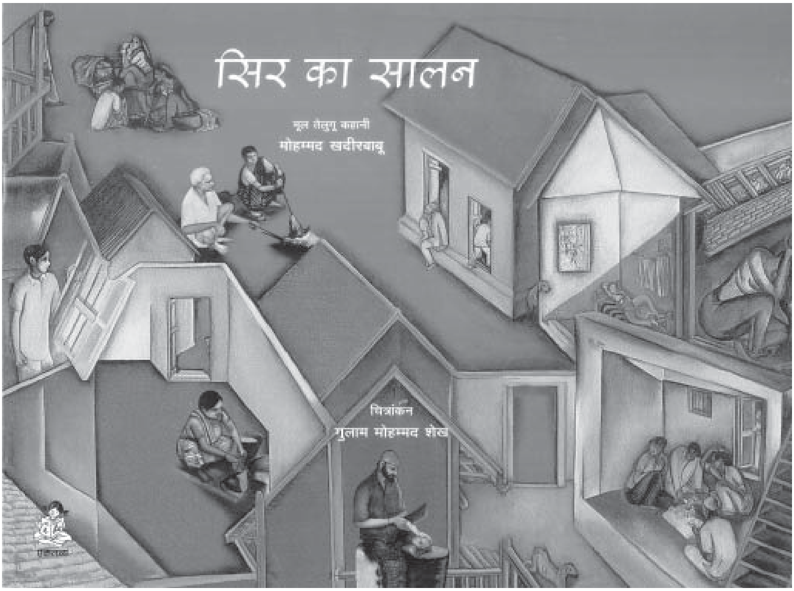

खदीरबाबू की लिखी मूल तेलुगु कहानी, डीसी बुक्स द्वारा अँग्रेज़ी में Head Curry शीर्षक से प्रकाशित की गई थी।* इस किताब में किसी बस्ती में, शाम को, किसी घर में बकरे के सिर की स्वादिष्ट रसेदार सब्ज़ी (सालन) बनने का बहुत ही सजीव और स्वाभाविक वर्णन है। पढ़ने के बाद जब चर्चा की बारी आई तो शिक्षक नाक-भौं सिकोड़ने लगे। कुछ ने कहा, “दूसरी किताब पर बात कीजिए, यह किताब ठीक नहीं है।” एक ने तो कहा कि “यह हमारी संस्कृति के खिलाफ है, शिक्षा तो पवित्र कर्म है, वहाँ ऐसी किताब की चर्चा ठीक नहीं।” दो शिक्षक तो उठकर बाहर ही चले गए; अफसोस है कि वे बाद की जीवन्त चर्चा में शामिल होने से वंचित रह गए।

सबसे पहले मैंने किताब के सुन्दर चित्रों की तरफ ध्यान दिलाया, और बताया कि ये एक प्रख्यात भारतीय चित्रकार गुलाम मोहम्मद शेख द्वारा बनाए गए हैं। चित्रों की जीवन्तता और उनमें निहित कला पक्ष और विशिष्ट शैली की बात की जिसके लिए गुलाम शेख जाने जाते हैं। फिर मैंने अगला सवाल किया कि “अच्छा, आप लोग यह बताएँ कि जैसी चित्रों में दिखाई है, कहीं पर ऐसी बस्ती

---

*[*] अब यह पुस्तक अँग्रेज़ी में भी एकलव्य द्वारा प्रकाशित की गई है।*

सचमुच होगी कि नहीं? वहाँ किताब में चित्रित लोग रहते होंगे कि नहीं? उनका खानपान और जीवन शैली ऐसी होगी कि नहीं?” शिक्षकों ने कहा, “हाँ, यह सब तो सच है।” कुछ ने तो अपने मुहल्ले के पास वाले मुहल्ले में समुदाय-विशेष के निवास की बात स्वीकारी। कुछ ने उनके साथ अपना परिचय होने के बारे में बताया और यह भी कि वे कई पीढ़ियों से वहाँ रह रहे हैं।

मैंने कहा, “अगर यह सब सच है तो इस सच में क्या मुश्किल है कि उनका खानपान अलग है। किताब में सिर्फ एक खानपान को कलात्मक और जीवन्त तरीके से चित्रित किया गया है, कहानी किसी दूसरे के खान-पान के बारे में कोई टिप्पणी नहीं करती। इसे सिर्फ इस तरह, इस नज़रिए से भी देखा जा सकता है। यह हमारा ही समाज है। हमेशा से है और इसी तरह से है। आज पहली बार किताब में समाने आया तो हमें थोड़ा असहज लगा, क्योंकि हम जानते हुए भी अपनी सांस्कृतिक सीमाओं के कारण अनभिज्ञ बने रहे हैं। आज एक किताब ने इसके बारे में इतने सुन्दर तरीके से जानने का मौका दिया है तो हम मुँह फेर रहे हैं। दरअसल, हमें इस प्रयास का सम्मान करना चाहिए। हम इतने उदार न हुए कि इस बस्ती में जाकर कभी यह सब देख पाते या जान पाते, पर किताब हमें यह मौका दे रही है। हम जिस भारतीय संस्कृति और इसके व्यापक और विविध होने की बार-बार दुहाई देते रहते हैं, उसमें *सिर का सालन* भी शामिल है।”

शिक्षकों का एक समूह अब थोड़ा समझने और स्वीकारने की स्थिति में आ रहा था। परन्तु बच्चों के बीच इस किताब के इस्तेमाल को लेकर उनमें अभी भी स्वीकार्यता नहीं बनी थी। उन्हें यह भय था कि बच्चे डर जाएँगे या उनमें घृणा का भाव पैदा होगा। मैं उन्हें यही समझाने की कोशिश करता रहा कि हमने तीस-चालीस की उम्र तक आते-आते अपनी धारणाएँ, मत और एकतरफा पसन्द पक्की कर ली हैं, इसलिए हमें इतनी

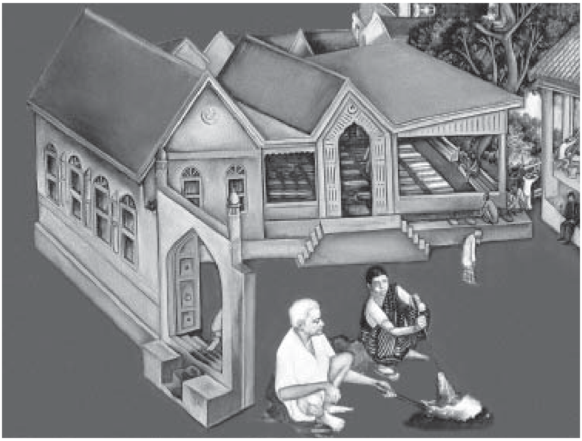

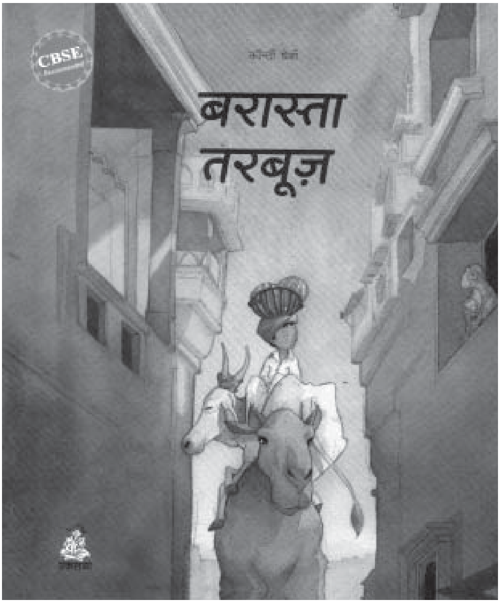

अड़चन हो रही है। लेकिन बच्चे अभी अपनी धारणाएँ बना रहे हैं इसलिए बहुत ज़रूरी है कि उन्हें जानने-समझने के मौके मिलते रहें।

## *बरास्ता तरबूज़* पर चर्चा

इसी तरह एक और किताब को लेकर शिक्षकों के एक समूह के साथ हुई चर्चा का अनुभव भी साझा करना चाहूँगा। *एकलव्य* प्रकाशन की ही एक और किताब है *बरास्ता तरबूज़।* किशोर मन का सहज प्रेम और आकर्षण इस किताब का केन्द्रीय विषय है। बहुत ही खूबसूरत और सजीव चित्रों के साथ इस कहानी को सरलता से बयाँ किया गया है। एक सामान्य-सा लड़का रास्ते में सफर के दौरान एक हमउम्र लड़की के प्रति आकर्षण महसूस करता है। फिर उससे मिलने और उसे एक उपहार देने के लिए उस तक पहुँचने का बहुत ही सुन्दर वर्णन है, जिसमें कई जानवर उसका साथ देते हैं। आखिर में पास में कुछ नहीं होने के बावजूद वह एक नायाब उपहार दे पाने में कामयाब होता है। इस कथा में अभिव्यक्ति ही सबसे महत्वपूर्ण भावना बनकर उभरती है। किशोर उम्र की एक स्वाभाविक अनुभूति भी उतनी ही स्वाभाविक है जितनी धूप-गर्मी या भूख-प्यास। लेकिन लड़के और लड़की के बीच पनपे इस स्वाभाविक प्रेम और आकर्षण को लेकर हमारा मन इतना संकुचित हो जाता है कि हम इस किताब को बच्चों के साथ इस्तेमाल करना तो दूर, इस पर आपस में भी चर्चा करने से कतराते हैं।

समूह कार्य के दौरान एक शिक्षक समूह को यह किताब दी गई थी, और मैं उनके पास ही बैठा था। मेरी रुचि इस बात को जानने में थी कि समूह में इसे लेकर क्या और किस तरह की चर्चा होती है।

एक शिक्षक ने इसे पढ़ने के बाद कहा, “सर, हमें कोई दूसरी किताब दे दीजिए।”

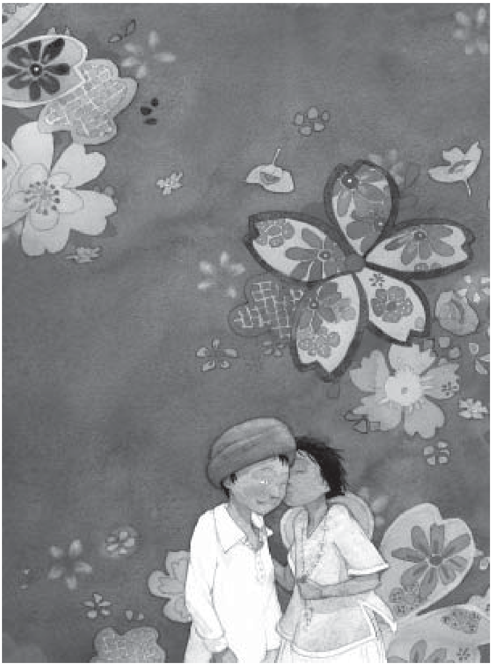

मैंने पूछा, “इसमें क्या खराबी है?”

उन्होंने कहा, “यह बच्चों के लायक नहीं है।”

मैंने कहा, “अभी तो बच्चों की बात ही नहीं है। अभी तो आप लोगों को इस पर अपने ही समूह में काम करना है।”

दूसरे शिक्षक ने इस बीच किताब उठा ली। उन्होंने कहा, “कल यह किताब मैं देख चुका हूँ। यह लाइब्रेरी के लायक किताब नहीं है, इससे बच्चों पर गलत असर पड़ेगा।”

मैंने फिर पूछा, “इसमें ऐसा क्या है जिससे आपको लगता है कि इससे बच्चों पर गलत असर पड़ेगा?”

उन्होंने कहा, “यह बच्चों की किताब नहीं है, बच्चे ऐसा नहीं सोचते।”

मैंने कहा, “बच्चे प्रेम नहीं करते हैं क्या? बच्चे आकर्षित नहीं होते हैं क्या?”

उन्होंने जवाब में कहा, “यह सब स्कूल की उम्र में ठीक नहीं है।”

फिर एक अन्य शिक्षक ने किताब पलटते हुए कहा, “यह हमारे भारत की किताब है ही नहीं। यह बाहर की किताब है जिसका हिन्दी में अनुवाद किया गया है।”

उन्होंने आगे जोड़ा, “बाहर के देश में ही ये सब फालतू के विषय चलते हैं, हमारे यहाँ नहीं।”

मैंने फिर पूछा, “इसमें व्यक्त भावनाएँ क्या भारत की नहीं हैं, क्या भारत में बच्चे प्रेम या आकर्षण महसूस नहीं करते?”

उनका जवाब था कि स्कूल की उम्र में सिर्फ पढ़ाई की बात होनी चाहिए।

मैंने कहा, “दोस्ती-दुश्मनी, अभाव, चमत्कार, मदद, ईर्ष्या, लालच, खुशी-दुख, यथार्थ-कल्पना, सब कुछ ही स्वाभाविक है और साहित्य का हिस्सा है तो फिर प्रेम से क्या परहेज़?”

"दरअसल, यहाँ हम अपनी अड़चन को बच्चों की अड़चन बना दे रहे हैं। प्रेम और आकर्षण को लेकर हम सहज नहीं हैं इसलिए बच्चों को भी हम इससे वंचित रखना चाहते हैं। बच्चों के बीच इस किताब को दिए बिना, इसके स्वीकार होने या नकारे जाने का फैसला हमें नहीं करना चाहिए। किताबें तैयार करने वाले भी इसी समाज के ज़िम्मेदार समूह से हैं। इन पर और बच्चों पर हमें भरोसा करना चाहिए।"

मुझे पता नहीं जिन शिक्षकों को *बरास्ता तरबूज़* में बड़ी दिक्कत दिख रही थी, इस चर्चा के बाद उनके नज़रिए में कुछ फरक आया या नहीं। लेकिन इस चर्चा के बहाने अधिकतर शिक्षकों को इस किताब को देखने-पढ़ने और उस पर चर्चा करने का मौका ज़रूर मिल गया। अधिकांश ने इसकी सराहना भी की और मज़ेदार यह रहा कि इसे पसन्द करने वालों में महिला शिक्षिकाएँ ज़्यादा रहीं।

बच्चों के आसपास के जीवन में बहुत कुछ अनवरत रूप से है, सिर्फ स्कूल ही नहीं है; और न पाठ्यक्रम की किताबें या शिक्षक ही सब कुछ उन्हें सिखा रहे हैं। बच्चे इस व्यापक समाज में रह रहे हैं। यह उनका भी समाज है और इसके बारे में हर हकीकत जानने का हक है उन्हें। फिर वे स्वीकारना, नकारना, सही, गलत, नैतिक-अनैतिक खुद से और अपनी ज़िम्मेदारी पर तय कर पाएँगे। अपनी किशोरावस्था में हम इस सबसे वंचित रहे; हमें परिवार, स्कूल और समाज ने ऐसी किताबें पढ़ने का मौका ही नहीं दिया, जिनसे हम इन सबके बारे में जान पाते। हमें सिर्फ एक तरह की बातें सुनने-पढ़ने तथा समझने को मिलीं, और हम बस एक तरह के व्यक्ति बनकर रह गए। इस विविधता के बारे में बच्चों को शुरू से ही जानने का मौका दें ताकि वे किसी किताब या सिनेमा को किसी के कहने पर अपने खिलाफ मानकर, किसी भीड़ का हिस्सा बन उसकी खिलाफत करने की बजाय, उसे जानने-समझने और स्वीकारने का साहस कर पाएँ।

---

**अनिल सिंह:** पिछले 25 वर्षों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। विगत डेढ़ दशक से प्राथमिक शिक्षा उनका प्रमुख कार्य रहा है। भोपाल के आनंद निकेतन डेमोक्रैटिक स्कूल की संकल्पना के दिनों से वे जुड़े रहे और उसका संचालन किया। वर्तमान में, टाटा ट्रस्ट के पराग इनिशिएटिव से जुड़कर बाल साहित्य और पुस्तकालय संवर्धन का काम कर रहे हैं।

सभी चित्र किताब *सिर का सालन* व *बरास्ता तरबूज़* से साभार।